

हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श का विकास

श्रीमती करिश्मा यादव¹ एवं गजेंद्र चक्रधारी²

¹शासकीय वेदराम महाविद्यालय, जिला: सक्ती, छत्तीसगढ़

²प्राचार्य, जानकी कॉलेज आफ एजुकेशन, धनुहारडोरा, रायगढ़, छत्तीसगढ़



Received 15 September 2026

Accepted 20 September 2026

Published 25 September 2026

Corresponding Author:

श्रीमती करिश्मा यादव

DOI: <https://doi.org/10.64880/pcjaict.v1i5.24>

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s).

 This is an open access article under the [Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).

OPEN ACCESS

सारांश :

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श का विकास भारतीय समाज के उन समुदायों की अस्मिता, स्मृति, संस्कृति और संघर्ष को साहित्यिक केंद्र में लाने की प्रक्रिया है जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के इतिहास और साहित्य में प्रायः बाहरी दृष्टि से देखा गया। हिंदी कहानी में यह विकास एकरेखीय नहीं रहा। आरंभिक चरण में आदिवासी जीवन का चित्रण रोमानी, लोक-रंजक अथवा 'वनवासी' जीवन की विलक्षणता के रूप में दिखाई देता है; धीरे-धीरे शोषण, वन-अधिकार, भूमि-अधिग्रहण, विस्थापन, श्रम, स्त्री-अनुभव और राज्य-सत्ता के प्रश्न कथ्य के केंद्र में आए। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और विशेषतः 1990 के बाद अस्मितामूलक विमर्शों के उभार ने आदिवासी कथा-लेखन को नई वैचारिक ऊर्जा दी। इसी के साथ आदिवासी समुदायों से आने वाले लेखकों की स्वानुभूति, भाषिक स्मृति और सांस्कृतिक दृष्टि ने प्रतिनिधित्व के प्रश्न को अधिक जटिल और प्रामाणिक बनाया। प्रस्तुत शोध-आलेख हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श की ऐतिहासिक यात्रा, प्रमुख प्रवृत्तियों, प्रतिनिधि रचनाकारों तथा बदलते सौंदर्यबोध का विश्लेषण करता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि समकालीन आदिवासी कहानी करुणा या 'विषय' भर नहीं, बल्कि जल-जंगल-जमीन, सामुदायिक स्वायत्तता, सांस्कृतिक अधिकार, लैंगिक प्रश्न, आधुनिक विकास की आलोचना और आत्मप्रतिनिधित्व से निर्मित एक स्वतंत्र वैचारिक-साहित्यिक क्षेत्र है।

बीज शब्द: आदिवासी विमर्श, हिंदी कहानी, अस्मिता, जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, आदिवासी स्त्री, स्वानुभूति, प्रतिरोध, संस्कृति।

1. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का आधुनिक विकास भारतीय समाज में घटित व्यापक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गहरे रूप में जुड़ा है। स्वतंत्रता, लोकतंत्र, औद्योगिकीकरण, विकास, भूमि-सुधार, वन-नीति, बाजार और वैश्वीकरण जैसी प्रक्रियाओं ने समाज के विभिन्न वर्गों को अलग-अलग ढंग से प्रभावित किया। आदिवासी समुदायों के संदर्भ में इन प्रक्रियाओं का अनुभव विशेष रूप से जटिल रहा, क्योंकि उनके जीवन का आधार केवल आर्थिक संसाधन नहीं बल्कि भूमि, वन, नदी, पर्वत, सामुदायिक स्मृति, भाषा, उत्सव और पारंपरिक ज्ञान की परस्पर संबद्ध दुनिया है। इसीलिए आदिवासी जीवन को समझने के लिए केवल गरीबी या पिछड़ेपन की श्रेणी पर्याप्त नहीं है; उसकी सांस्कृतिक स्वायत्तता और ऐतिहासिक अनुभव को भी केंद्र में रखना आवश्यक है।

‘आदिवासी विमर्श’ साहित्य में इसी आवश्यकता से विकसित वह आलोचनात्मक क्षेत्र है जो आदिवासी समुदायों को किसी बाहरी जिज्ञासा, लोक-चित्र या करुणा के पात्र के रूप में देखने के बजाय उन्हें अपने इतिहास, संस्कृति, संघर्ष और भविष्य के सक्रिय निर्माता के रूप में स्वीकार करता है। इसमें यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि आदिवासी के बारे में कौन लिख रहा है, किस दृष्टि से लिख रहा है, उसकी भाषा और जीवन-दृष्टि को कितना स्थान मिल रहा है, तथा विकास और आधुनिकता के नाम पर उसके संसाधनों और अस्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों को कथा किस प्रकार व्यक्त करती है।

हिंदी कहानी इस विमर्श के विकास की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। कहानी का संक्षिप्त और तीक्ष्ण रूप स्थानीय अनुभव, जीवन की विडंबना, संघर्ष और मानवीय संबंधों को प्रभावशाली ढंग से सामने लाता है। उपलब्ध शोध-सामग्री से यह भी स्पष्ट होता है कि आदिवासी लेखकों द्वारा हिंदी में कहानी-लेखन का इतिहास अपेक्षाकृत पुराना है। भारतीय जनसंचार संस्थान की पत्रिका ‘संचार माध्यम’ में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार ‘निकलंका’ पत्रिका में 1921 में सुल्तानिक किप्रोदिया की ‘एक छोटी-सी कथा’ प्रकाशित हुई और 1921 से 1970 के बीच की ऐसी आरंभिक कहानियों का संकलन बाद में सामने आया। यह तथ्य हिंदी आदिवासी कथा के इतिहास को केवल उत्तर-आधुनिक या 1990 के बाद की घटना मानने की धारणा को संशोधित करता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य एवं पद्धति

इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श के विकास-क्रम को समझना, उसके प्रमुख कथ्यगत परिवर्तनों की पहचान करना और आदिवासी तथा गैर-आदिवासी रचनाकारों के योगदान को प्रतिनिधित्व के प्रश्न के साथ देखना है। साथ ही जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, सांस्कृतिक अस्मिता, स्त्री-अनुभव, शिक्षा, श्रम, धर्मांतरण, बाजार और प्रतिरोध जैसे प्रमुख विषयों की कथा-अभिव्यक्ति का विवेचन किया गया है।

अध्ययन मूलतः वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक और साहित्य-समीक्षात्मक प्रकृति का है। इसमें हिंदी कहानी और आदिवासी साहित्य से संबंधित उपलब्ध आलोचनात्मक पुस्तकों, विश्वविद्यालयीय पाठ्य-सामग्री, शोध-लेखों और प्रतिनिधि कथा-संदर्भों का उपयोग किया गया है। इसका उद्देश्य काल्पनिक सांख्यिकीय निष्कर्ष प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि उपलब्ध साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर विकास की प्रवृत्तियों को व्यवस्थित करना है।

3. आदिवासी विमर्श : अर्थ और वैचारिक आधार

‘आदिवासी’ शब्द भारत के विविध मूलनिवासी/जनजातीय समुदायों के लिए व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संकेतक के रूप में प्रयुक्त होता है, पर इन समुदायों की भाषाएँ, इतिहास, जीवन-पद्धतियाँ और क्षेत्रीय अनुभव एक समान नहीं हैं। इसलिए आदिवासी विमर्श को किसी एक समरूप ‘आदिवासी संस्कृति’ की कल्पना में सीमित करना उचित नहीं। इसकी केंद्रीय चिंता विविध समुदायों के स्वत्व, गरिमा, संसाधनों, ज्ञान-परंपराओं और आत्मनिर्णय की आवाज को समझना है आदिवासी साहित्य की वैचारिकी में ‘जल, जंगल और जमीन’ केवल नारा नहीं बल्कि जीवन-दृष्टि का संक्षिप्त रूप है। जंगल भोजन, औषधि, आजीविका, देवस्थल और सामुदायिक स्मृति का आधार हो सकता है; जमीन निजी संपत्ति से अधिक पूर्वजों और समुदाय के संबंध का स्थल है; जल जीवन और पर्यावरणीय संतुलन का स्रोत है। जब खनन, बाँध, उद्योग, वन-कानून या बाजार इन संबंधों को तोड़ते हैं, तब कथा में विस्थापन केवल स्थान-परिवर्तन नहीं रहता बल्कि सांस्कृतिक और मानसिक विखंडन का अनुभव बन जाता है।

वंदना टेटे की वैचारिक कृति ‘आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन’ आदिवासी दर्शन, सौंदर्यबोध और साहित्य को समझने वाली महत्वपूर्ण अवधारणात्मक पुस्तकों में गिनी जाती है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य का मूल्यांकन केवल मुख्यधारा के स्थापित सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों से नहीं, बल्कि सामुदायिकता, प्रकृति-संबंध, मौखिक परंपरा, सामूहिक स्मृति और प्रतिरोध की अपनी कसौटियों से भी किया जाना चाहिए।

4. हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श का विकास-क्रम

4.1 आरंभिक स्वर : उपस्थिति से आत्म-अभिव्यक्ति की ओर

हिंदी कथा में आदिवासी जीवन की उपस्थिति प्रारंभ में प्रायः बाहरी पर्यवेक्षक की दृष्टि से हुई। वन, पहाड़, लोकाचार और तथाकथित ‘असभ्य’ या ‘सरल’ जीवन को लेकर औपनिवेशिक तथा मुख्यधाराई कल्पनाएँ साहित्य पर भी प्रभाव डालती थीं। किंतु समानांतर रूप से आदिवासी समाज के भीतर

शिक्षा और मुद्रण-संस्कृति के प्रसार ने स्वलेखन की संभावनाएँ विकसित कीं। 1921 की 'निकलंका' में प्रकाशित 'एक छोटी-सी कथा' और उसके बाद उसी पत्रिका में प्रकाशित आदिवासी लेखकों की कहानियाँ इस स्व-अभिव्यक्ति की आरंभिक परंपरा का प्रमाण हैं।

इन आरंभिक रचनाओं का महत्त्व केवल साहित्यिक 'पहली' होने में नहीं है। वे यह बताती हैं कि आदिवासी समाज स्वयं को हिंदी में अभिव्यक्त कर रहा था, सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन पर विचार कर रहा था और आधुनिक शिक्षा तथा समुदाय के प्रश्नों से संवाद कर रहा था। इस तथ्य से आदिवासी कथा का इतिहास अधिक बहुकेंद्रीय बनता है और वह केवल गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा किए गए चित्रण का इतिहास नहीं रह जाता।

4.2 स्वतंत्रताोत्तर कथा और सामाजिक यथार्थ

स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र-निर्माण और विकास की योजनाओं के साथ आदिवासी क्षेत्रों में खनन, उद्योग, बाँध और प्रशासनिक हस्तक्षेप बढ़े। हिंदी कथा में आदिवासी पात्र अब केवल वन-जीवन की रोचकता से नहीं, बल्कि गरीबी, साहूकारी, ठेकेदारी, पुलिस-प्रशासन, भूमि-हड़प और श्रम-शोषण से जुड़े दिखाई देने लगे। इस चरण ने आगे चलकर आदिवासी विमर्श के सामाजिक यथार्थवादी आधार को मजबूत किया।

फिर भी इस दौर के लेखन में एक सीमा यह रही कि कई बार आदिवासी समाज को 'समस्या' के रूप में देखा गया—जैसे अशिक्षा, अंधविश्वास और पिछड़ापन उसकी मूल पहचान हों। बाद की आदिवासी आलोचना ने इस दृष्टि को चुनौती दी और प्रश्न उठाया कि गरीबी या शिक्षा की कमी को समुदाय की अंतर्निहित कमजोरी मानने के बजाय उसके ऐतिहासिक कारणों—संसाधनों से बेदखली, शोषक संरचनाओं और असमान विकास—को समझा जाना चाहिए।

4.3 1980–1990 के बाद : विमर्श की स्पष्ट पहचान

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में दलित, स्त्री और अन्य अस्मितामूलक विमर्शों के साथ आदिवासी प्रश्न भी हिंदी आलोचना के केंद्र में अधिक स्पष्टता से आया। 1990 के बाद उदारीकरण, निजीकरण और खनिज-संसाधनों पर बढ़ते कॉर्पोरेट दबाव ने आदिवासी क्षेत्रों में भूमि-अधिग्रहण और विस्थापन के प्रश्नों को तीव्र बनाया। कहानी ने इन परिवर्तनों को स्थानीय अनुभव और मानवीय त्रासदी के रूप में दर्ज किया।

इस काल में संजीव जैसे कथाकारों की रचनाओं ने शोषण, खदान, ठेकेदारी और सत्ता-संबंधों को कथा का विषय बनाया। उनकी 'टीस', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' जैसी कहानियाँ आदिवासी जीवन से जुड़े प्रश्नों के संदर्भ में चर्चा में रही हैं। संजीव के कथा-संसार में हाशिये के समुदायों, श्रमिक जीवन और आदिवासी क्षेत्रों का व्यापक अनुभव दिखाई देता है। यहाँ आदिवासी पात्र केवल दया के पात्र नहीं, बल्कि सत्ता-संरचना से टकराने वाले मनुष्य हैं।

4.4 इक्कीसवीं सदी : स्वानुभूति, अस्मिता और बहुवचन

इक्कीसवीं सदी में आदिवासी कहानी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि स्वयं आदिवासी समुदायों से आने वाले लेखकों की बढ़ती उपस्थिति है। रामदयाल मुंडा की 'उस दिन रास्ते में', रोज केरकेट्टा की 'आँचल का टुकड़ा', वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'जंगल की ललकार', मंगल सिंह मुंडा की 'महुआ का फूल', केदार प्रसाद मीणा की 'कामरेड मीणा' और हरिराम मीणा की 'साँवड्या' जैसी रचनाओं का उल्लेख विश्वविद्यालयीय हिंदी पाठ्य-सामग्री में आदिवासी कहानी के प्रमुख उदाहरणों के रूप में मिलता है।

यह परिवर्तन 'विषय' से 'वक्ता' की ओर संक्रमण है। जब समुदाय के भीतर से लेखक लिखता है तो भाषा, रीति, रिश्ते, हास्य, स्मृति और सांस्कृतिक संकेत अधिक अंदरूनी संदर्भों के साथ आते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि केवल जन्मगत पहचान ही साहित्यिक प्रामाणिकता की गारंटी है, बल्कि यह कि अनुभव की स्थिति और प्रतिनिधित्व की नैतिकता साहित्यिक मूल्यांकन के आवश्यक प्रश्न बन जाते हैं। गैर-आदिवासी लेखन भी महत्वपूर्ण हो सकता है, किंतु उसमें शोध, संवेदनशीलता और समुदाय की स्वायत्तता के प्रति उत्तरदायित्व अपेक्षित है।

5. प्रमुख कथ्यगत प्रवृत्तियाँ

5.1 जल-जंगल-जमीन और संसाधनों पर अधिकार

आदिवासी कहानी का सबसे व्यापक कथ्य भूमि, वन और प्राकृतिक संसाधनों पर समुदाय के अधिकार का प्रश्न है। खदान, वन-विभाग, ठेकेदार, साहूकार या विकास-परियोजना जब स्थानीय जीवन में प्रवेश करती है तो कथा में संघर्ष आर्थिक होने के साथ सांस्कृतिक भी हो जाता है। जंगल का विनाश जीविका का विनाश है, पर साथ ही गीत, उत्सव, देवस्थल, पूर्वज-स्मृति और सामुदायिक संबंधों का क्षरण भी है। इसीलिए समकालीन कहानी पर्यावरणीय न्याय और सामाजिक न्याय को परस्पर संबद्ध करती है।

5.2 विस्थापन और विकास का अंतर्विरोध

‘विकास’ आदिवासी विमर्श में एक विवादास्पद अवधारणा के रूप में उभरता है। सड़क, बाँध, खनन या उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए उपलब्धि हो सकते हैं, पर यदि स्थानीय समुदाय को निर्णय में भागीदारी, न्यायपूर्ण पुनर्वास और सांस्कृतिक सुरक्षा न मिले तो वही विकास विस्थापन में बदल जाता है। कहानी इस बड़े नीतिगत प्रश्न को घर, खेत, स्मृति और रिश्तों के टूटने के छोटे मानवीय दृश्यों में रूपांतरित करती है।

5.3 शोषण, श्रम और सत्ता-संरचना

आदिवासी कथा में महाजन, ठेकेदार, खदान-मालिक, पुलिस, दलाल और कभी-कभी स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व शोषण की जटिल संरचना के रूप में सामने आते हैं। कथा का महत्त्व इस बात में है कि वह शोषण को किसी एक ‘खलनायक’ तक सीमित न रखकर व्यवस्था, बाजार और प्रशासन के गठजोड़ को पहचानती है। श्रम का अवमूल्यन, कम मजदूरी, ऋण और दस्तावेजी प्रक्रियाओं से अनभिज्ञता का लाभ उठाना बार-बार उभरने वाले प्रसंग हैं।

5.4 सांस्कृतिक अस्मिता, भाषा और स्मृति

आदिवासी अस्मिता का प्रश्न केवल राजनीतिक अधिकार तक सीमित नहीं है। मातृभाषाएँ, लोकगीत, नृत्य, कथा, पर्व, गोत्र-स्मृति और प्रकृति से जुड़े विश्वास सामुदायिक पहचान के आधार हैं। हिंदी में लिखते हुए आदिवासी कथाकार अक्सर अपनी मातृभाषा के शब्द, लय और मुहावरे को साथ लाते हैं। इससे हिंदी का भाषिक संसार विस्तृत होता है और मानकीकृत भाषा के भीतर बहुभाषिक भारत की उपस्थिति दर्ज होती है।

5.5 आदिवासी स्त्री का अनुभव

आदिवासी स्त्री का जीवन विमर्श को एक अतिरिक्त जटिलता देता है। वह वर्गीय-आर्थिक शोषण, विस्थापन और सांस्कृतिक संकट से प्रभावित होती है, साथ ही लैंगिक हिंसा, श्रम के असमान बोझ और बाहरी सत्ता की यौनिक दृष्टि का सामना भी कर सकती है। समकालीन लेखन में स्त्री केवल पीड़िता नहीं; वह परिवार, उत्पादन, संस्कृति और प्रतिरोध की सक्रिय वाहक है। रोज के रेकॉर्ड और अन्य आदिवासी स्त्री लेखिकाओं का लेखन इस आत्मस्वर को विशेष महत्त्व देता है।

5.6 शिक्षा, धर्म और आधुनिकता

शिक्षा आदिवासी कथा में मुक्ति और दूरी—दोनों संभावनाओं के साथ आती है। शिक्षा अधिकार-बोध और रोजगार का माध्यम बन सकती है, किंतु ऐसी शिक्षा जो मातृभाषा और स्थानीय ज्ञान को हीन मानती हो, सांस्कृतिक अलगाव भी पैदा कर सकती है। इसी प्रकार धर्मांतरण, मिशनरी शिक्षा और आधुनिक संस्थाओं के प्रश्न को कहानी एकरेखीय ढंग से नहीं बल्कि समुदाय, अवसर, पहचान और परिवर्तन के अंतर्विरोधों के साथ प्रस्तुत करती है।

5.7 प्रतिरोध और सामुदायिक चेतना

समकालीन आदिवासी कहानी की पहचान केवल पीड़ा नहीं, प्रतिरोध भी है। पात्र अन्याय को नियति मानकर स्वीकार नहीं करते; वे प्रश्न करते हैं, संगठित होते हैं, स्मृतियों को बचाते हैं और अधिकार की भाषा सीखते हैं। इस प्रतिरोध में ऐतिहासिक विद्रोहों की स्मृति, स्थानीय नायक, सामुदायिक सभा, गीत और सामूहिक श्रम तक सांस्कृतिक ऊर्जा के स्रोत बनते हैं।

6. प्रमुख रचनाकार और कथा-दृष्टि

रामदयाल मुंडा आदिवासी संस्कृति, भाषा और बौद्धिक परंपरा के महत्त्वपूर्ण नाम हैं। उनकी कथा-दृष्टि में समुदाय के भीतर का अनुभव और आधुनिक परिवर्तन के बीच का तनाव दिखाई देता है। 'उस दिन रास्ते में' जैसी कहानी का उल्लेख आदिवासी कहानी की प्रतिनिधि रचनाओं में किया जाता है। उनके लेखन का व्यापक महत्त्व इस बात में है कि आदिवासी ज्ञान को 'लोक-सामग्री' भर न मानकर आधुनिक बौद्धिक संवाद का हिस्सा बनाया जाए।

रोज केरकेट्टा का लेखन आदिवासी स्त्री-अनुभव, सामाजिक संबंध और सांस्कृतिक अस्मिता को भीतर से व्यक्त करता है। 'आँचल का टुकड़ा' जैसी कहानी आदिवासी कथा के अध्ययन में उल्लेखित है। उनके यहाँ स्त्री का अनुभव समुदाय की संस्कृति से जुड़ा है, किंतु वह प्रश्नाकुल भी है; इस प्रकार स्त्री-विमर्श और आदिवासी विमर्श के अंतर्संबंध खुलते हैं।

वाल्टर भेंगरा 'तरुण' और मंगल सिंह मुंडा जैसे लेखकों की कहानियों में जंगल, समुदाय और बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ कथा का आधार बनती हैं। 'जंगल की ललकार' तथा 'महुआ का फूल' जैसे शीर्षक ही प्रकृति और सामुदायिक जीवन के गहरे संबंध का संकेत देते हैं। इन रचनाकारों की उपस्थिति यह स्थापित करती है कि आदिवासी कथा की अपनी रचनात्मक परंपरा है, जिसे मुख्यधारा की हिंदी कहानी के इतिहास में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए।

हरिराम मीणा ने इतिहास, संस्कृति और आदिवासी प्रतिरोध को साहित्यिक विमर्श से जोड़ने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उनकी 'साँवडूया' जैसी कहानी आदिवासी कथा की प्रतिनिधि सूची में आती है। उनका लेखन यह संकेत देता है कि इतिहास के आधिकारिक आख्यानो से बाहर रह गए समुदायों की स्मृति साहित्य के माध्यम से पुनर्पाठ की मांग करती है।

केदार प्रसाद मीणा कहानीकार और संपादकीय हस्तक्षेप—दोनों स्तरों पर महत्त्वपूर्ण हैं। 'कामरेड मीणा' जैसी कहानी के साथ आदिवासी कहानियों के संकलन ने विविध लेखकों को एक साझा विमर्शात्मक संदर्भ में पढ़ने का अवसर दिया। संकलन-परंपरा का महत्त्व इसलिए भी है कि बिखरी हुई रचनाओं को साहित्यिक इतिहास में दृश्यता मिलती है।

गैर-आदिवासी लेखकों में संजीव, अरुण प्रकाश, स्वयं प्रकाश और रणेन्द्र जैसे नाम आदिवासी जीवन से जुड़े कथ्य के संदर्भ में चर्चित हैं। IGNOU की पाठ्य-सामग्री में अरुण प्रकाश की 'सूखी बेला एक्का लौट रही है', स्वयं प्रकाश की 'जंगल का दाह', संजीव की 'दुनिया की सबसे हसीन औरत' और रणेन्द्र की 'वह बस भूल थी' का उल्लेख किया गया है। इन रचनाओं का मूल्य इस आधार पर देखा जाना चाहिए कि वे आदिवासी पात्रों की मनुष्यता, सामाजिक संदर्भ और सत्ता-संबंधों को किस गहराई से सामने लाती हैं।

7. कथा-भाषा और सौंदर्यबोध में परिवर्तन

आदिवासी विमर्श ने हिंदी कहानी की विषय-वस्तु ही नहीं, उसकी भाषा और सौंदर्यबोध को भी प्रभावित किया है। मुख्यधारा की मानक हिंदी के भीतर स्थानीय शब्दों, संबोधनों, वनस्पतियों, पर्वों, गीतों और सामुदायिक अवधारणाओं का प्रवेश कथा को नया भाषिक भूगोल देता है। अनुवाद या हिंदी लेखन में यह चुनौती रहती है कि स्थानीय शब्दों को 'समझाने' की प्रक्रिया उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता को समाप्त न कर दे।

मौखिकता आदिवासी कथा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। स्मृति, मिथक, पूर्वज-कथा, गीत और सामूहिक कथन आधुनिक कहानी में नए रूप ग्रहण करते हैं। इससे रैखिक कथानक के स्थान पर स्मृति-आधारित, प्रसंगात्मक या सामुदायिक कथन विकसित हो सकता है। प्रकृति यहाँ पृष्ठभूमि नहीं, कई बार कथा की सक्रिय उपस्थिति होती है। पेड़, पहाड़, नदी और पशु जीवन-संबंधों के हिस्से के रूप में आते हैं।

सौंदर्य का केंद्र भी बदलता है। आदिवासी कथा में सुंदरता केवल शिल्पगत परिष्कार नहीं बल्कि जीवन की सामुदायिकता, श्रम, प्रकृति-संतुलन और प्रतिरोध की गरिमा में भी निहित है। इसीलिए कुछ आदिवासी चिंतक मुख्यधारा के साहित्यिक प्रतिमानों के साथ आदिवासी दर्शन से विकसित आलोचनात्मक कसौटियों की आवश्यकता पर बल देते हैं।

8. प्रतिनिधित्व का प्रश्न : सहानुभूति से सहभागिता तक

आदिवासी विमर्श के विकास ने हिंदी साहित्य के सामने प्रतिनिधित्व का मूल प्रश्न रखा है—क्या किसी समुदाय के बारे में लिख देना उसके अनुभव का प्रतिनिधित्व है? प्रारंभिक और बाहरी दृष्टि वाले लेखन में कई बार आदिवासी पात्र ‘भोला’, ‘जंगली’, ‘रहस्यमय’ या ‘प्रकृति-पूजक’ जैसी स्थिर छवियों में सीमित हुए। ऐसी छवियाँ विविध समुदायों को एकरूप बनाती हैं और आधुनिक आदिवासी जीवन की जटिलताओं को छिपा सकती हैं।

समकालीन कथा इस रूढ़ि से आगे बढ़ती है। वह आदिवासी को किसान, मजदूर, विद्यार्थी, स्त्री, कर्मचारी, कार्यकर्ता, विस्थापित, कलाकार और आधुनिक नागरिक—अनेक भूमिकाओं में देखती है। शहर और गाँव, परंपरा और आधुनिकता, मातृभाषा और हिंदी, समुदाय और व्यक्ति के बीच उसकी पहचान लगातार निर्मित होती है। इस बहुलता को स्वीकार करना विमर्श की परिपक्वता का संकेत है।

आदिवासी और गैर-आदिवासी लेखन के बीच कठोर विभाजन के बजाय आलोचना को दृष्टि, अनुसंधान, संवेदनशीलता और सत्ता-संबंधों पर ध्यान देना चाहिए। स्वानुभूति समुदाय के भीतर की सूक्ष्मताओं को सामने ला सकती है; सहानुभूतिपूर्ण बाहरी लेखन भी सामाजिक अन्याय को प्रभावशाली ढंग से उजागर कर सकता है। किंतु किसी भी स्थिति में आदिवासी समुदाय को निष्क्रिय वस्तु या सजावटी ‘लोक’ में बदल देना विमर्श की मूल चेतना के विपरीत है।

9. समकालीन चुनौतियाँ

पहली चुनौती आदिवासी समुदायों की आंतरिक विविधता को पहचानने की है। ‘आदिवासी’ एक व्यापक श्रेणी है; संथाल, मुंडा, उराँव, भील, मीणा, गोंड, थारू और अनेक अन्य समुदायों के इतिहास और सांस्कृतिक संदर्भ अलग हैं। हिंदी कहानी को इस विविधता को विशिष्ट स्थानीय संदर्भों के साथ प्रस्तुत करना होगा।

दूसरी चुनौती भाषाई है। अनेक आदिवासी रचनाएँ पहले अपनी मातृभाषाओं में जन्म लेती हैं और हिंदी में अनूदित होती हैं। अनुवाद में शब्दों के साथ सांस्कृतिक अर्थ, मौखिक लय और सामुदायिक संदर्भ को बचाना आवश्यक है। तीसरी चुनौती प्रकाशन और साहित्यिक संस्थानों में दृश्यता की है। पत्रिकाओं, विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों और शोध में आदिवासी लेखकों की उपस्थिति बढ़ी है, फिर भी साहित्यिक इतिहास में उनकी आरंभिक और समकालीन परंपराओं को व्यवस्थित रूप से दर्ज करने की आवश्यकता बनी हुई है।

चौथी चुनौती बाजार द्वारा ‘आदिवासीपन’ के उपभोग की है। लोक-नृत्य, वेशभूषा या प्रकृति-जीवन की आकर्षक छवियाँ आसानी से बिकाऊ प्रतीक बन सकती हैं, जबकि भूमि-अधिकार, विस्थापन, स्वास्थ्य, शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी के कठिन प्रश्न पीछे छूट जाते हैं। गंभीर कहानी इस सतही रोमानीकरण का प्रतिरोध करती है।

10. हिंदी कहानी को आदिवासी विमर्श का योगदान

आदिवासी विमर्श ने हिंदी कहानी के अनुभव-क्षेत्र का विस्तार किया है। उसने साहित्य को महानगर और मध्यवर्गीय जीवन से बाहर जंगल, खदान, पहाड़, दूरस्थ गाँव और बहुभाषिक समुदायों की दुनिया से जोड़ा। उसने ‘विकास’ की स्थापित अवधारणा को मनुष्य और पर्यावरण के दृष्टिकोण से पुनः प्रश्नांकित किया तथा आधुनिकता की कीमत किसे चुकानी पड़ती है, यह पूछने की नैतिक शक्ति दी।

इस विमर्श ने पर्यावरणीय चेतना को सामाजिक न्याय से जोड़ा। प्रकृति-संरक्षण को केवल वैज्ञानिक या सौंदर्यपरक प्रश्न न मानकर जीवन, संस्कृति और अधिकार का प्रश्न बनाया। साथ ही इसने हिंदी कहानी को नए शब्द, लोक-स्मृतियाँ, मिथक, कथन-शैलियाँ और जीवन-दर्शन दिए। सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि आदिवासी समुदाय कथा में ‘दूसरा’ नहीं, बोलता हुआ स्व बनकर उपस्थित हुआ।

11. निष्कर्ष

हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श का विकास एक लंबी और बहुस्तरीय प्रक्रिया है। इसे केवल 1990 के बाद उभरे विमर्श के रूप में देखना ऐतिहासिक रूप से अधूरा होगा, क्योंकि आदिवासी लेखकों की हिंदी कहानी का आरंभिक मुद्रित इतिहास 1920 के दशक तक पहुँचता है। फिर भी यह सही है कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक और इक्कीसवीं सदी में इस लेखन को व्यापक वैचारिक पहचान, आलोचनात्मक शब्दावली और संस्थागत दृश्यता मिली। इस यात्रा में आदिवासी जीवन का बाहरी चित्रण धीरे-धीरे अधिकार, अस्मिता और स्वानुभूति पर आधारित कथा-दृष्टि की ओर बढ़ा है। जल-जंगल-जमीन, विस्थापन, शोषण, स्त्री-अनुभव, भाषा, सांस्कृतिक स्मृति और प्रतिरोध इसके केंद्रीय सरोकार बने हैं। रामदयाल मुंडा, रोज केरकेट्टा, वाल्टर भेंगरा 'तरुण', मंगल सिंह मुंडा, हरिराम मीणा और केदार प्रसाद मीणा जैसे रचनाकारों ने समुदाय के भीतर से आने वाली कथा-दृष्टि को सशक्त किया, जबकि संजीव, अरुण प्रकाश, स्वयं प्रकाश और अन्य लेखकों ने भी आदिवासी जीवन से जुड़े सामाजिक प्रश्नों को हिंदी कथा के व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाया। आज आवश्यकता यह है कि आदिवासी कहानी को किसी 'विशेष विषय' के परिशिष्ट के रूप में नहीं, हिंदी साहित्य की बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और लोकतांत्रिक संरचना के अभिन्न अंग के रूप में पढ़ा जाए। इसकी प्रामाणिकता का अर्थ केवल तथ्य-संग्रह नहीं, बल्कि समुदाय की गरिमा, विविधता और आत्मप्रतिनिधित्व का सम्मान है। इसी दृष्टि से हिंदी कहानी में आदिवासी विमर्श भारतीय लोकतंत्र, पर्यावरणीय न्याय और सांस्कृतिक बहुलता की साहित्यिक समझ को गहरा करता है।

संदर्भ सूची

- टेटे, वंदना. (2013). आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन. प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन.
- टेटे, वंदना एवं पंकज, अश्विनी कुमार (सं.). (2020). हिंदी की आरंभिक आदिवासी कहानियाँ. (निकलंका में प्रकाशित आरंभिक कहानियों का संकलन).
- मीणा, गंगा सहाय. आदिवासी साहित्य विमर्श. विभिन्न संस्करण.
- गुप्ता, रमणिका. आदिवासी साहित्य यात्रा. विभिन्न संस्करण.
- मीणा, केदार प्रसाद (सं.). आदिवासी कहानियाँ. साहित्यिक संकलन.
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय. हिंदी कहानी : विभिन्न प्रवृत्तियाँ. ई-ज्ञानकोश, पाठ्य-सामग्री.
- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय. आदिवासी साहित्य लेखन की प्रवृत्तियाँ; आदिवासी विमर्श और जल, जंगल, जमीन के मुद्दे. हिंदी पाठ्यक्रम सामग्री.
- भारतीय जनसंचार संस्थान. (2025, जनवरी-मार्च). हिंदी-बांग्ला की आदिवासी कथा साहित्य परंपरा. संचार माध्यम.
- संजीव. प्रतिनिधि कहानियाँ एवं आदिवासी जीवन-केंद्रित कथा-रचनाएँ. विभिन्न संस्करण.
- केरकेट्टा, रोज. आदिवासी समाज, संस्कृति और कथा-साहित्य से संबंधित रचनाएँ. विभिन्न प्रकाशन.
- मीणा, हरिराम. आदिवासी इतिहास, संस्कृति और साहित्य संबंधी रचनाएँ. विभिन्न प्रकाशन.
- मुंडा, रामदयाल. आदिवासी भाषा, संस्कृति और साहित्य संबंधी लेखन. विभिन्न प्रकाशन.

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.